विश्वनाथ बापूराव साबले

बनाम

शालिनीबाई नागप्पा साबले और अन्य

दीवानी अपील सं 1782-83/2009

23 मार्च, 2009

[एस.बी. सिन्हा और डॉ. मुकुंदकम शर्मा, न्यायाधिपतिगण]

घोषणा का वाद-पक्षकारों के पूर्व हकदार भाई- संयुक्त और स्व अर्जित संपति के मालिक- प्रत्यर्थी के पिता ने एक पंजीकृत विक्रय विलेख से संयुक्त और स्व अर्जित संपति मे अपने हिस्से को वादी के हित मे पूर्ववर्ती को बेच दिया और समझौता विलेख से उस संपति को अपने जीवन काल में उपभोग का हक हासिल किया- घोषणा और निषेधाज्ञा का वाद स्वामित्व के आधार पर- डिक्री- डिक्री प्रथम अपील न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट- अभिनिर्धारित: दस्तावेज पंजीकृत थे, इसलिए सही निष्पादन की उपधारणा- दस्तावेज दिखावटी थे के संबंध में कोई सबूत नहीं- वाद स्वामित्व पर- एक बार वादी ने अपना स्वामित्व साबित कर दिया तो प्रतिकूल कब्जा साबित करने का भार प्रतिवादी पर था जो वे साबित करने मे वह विफल रहे- प्रत्यर्थी का दावा कि दस्तावेज का निष्पादन लेनदारों से बचने के लिए मान्य नहीं है क्योंकि लेनदारों ने कोई कार्यवाही नहीं की-

साथ ही, धारा 31 विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 के तहत भी दस्तावेज को शून्य करने के लिए कोई वाद नहीं लाया गया- लंबा कब्जा प्रतिकूल कब्जे के लिए काफी नहीं है-आक्षेपित आदेश मे कोई परिवर्तन की आवश्यकता नहीं- प्रतिकूल कब्जा

ब, अपीलकर्ता के पिता और एस, प्रत्यर्थी के हित में पूर्ववर्ती सौतेले भाई थे- उनकी कोई संयुक्त पारिवारिक संपति थी। ब की कुछ स्व अर्जित संपति भी थी। उसको व्यवसाय में बहुत नुकसान हुआ ओर 350000 का लोन हो गया। 21.7.1955 को वादग्रस्त संपति के चार पंजीकृत विलेख निष्पादित किए। पहला बंटवारा विलेख था जिसमे संयुक्त संपति का बंटवारा बराबर किया गया और ब ने अपना हिस्सा एस को बेच दिया। उसने कथित तौर पर अपनी स्व अर्जित संपति भी एस को बेच दी। उसी दिन एस ने दो समझौता विलेखों का निष्पादन किया जिसमे उसके पक्ष में आई जमीन को ब को उपभोग के लिए दी गई। परंतु, यह कहा गया कि ब का उस पर कोई पूर्ण अधिकार नहीं होगा और वो उसका विच्छेद नहीं कर सकेगा। ब की मृत्यु 1958 में हो गई।

एस की मृत्यु के बाद जो 1977 में हुई, प्रतिवादी ने एस के उत्तराधिकारी के नाते वादग्रस्त संपति पर स्वामित्व की घोषणा और कब्जे के लिए वाद दायर किया। विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री किया और

प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय ने उसे पुष्ट किया। प्रतिवादी ने अपील दायर की।

अपील खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहा :

1.1 दिनांक 2-07-1955 को निष्पादित सभी चार विलेख पंजीकृत दस्तावेज हैं। वे वैध निष्पादन की उपधारणा रखते हैं। यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि उक्त दस्तावेज़ दिखावटी या नाममात्र के थे। नीचे की विद्वान अदालतों ने स्पष्ट रूप से माना है कि अपीलकर्ता अपने ऊपर लागू सबूतों के भार का निर्वहन करने में विफल रहा। हालाँकि, हम अपने सामने उठाए गए विवादों पर स्वतंत्र रूप से विचार करेंगे। प्रदर्श 36 एक विक्रय विलेख है जिसके तहत बापुराव ने अपना आधा हिस्सा शिवप्पा को बेच दिया। अगर बापुराव का तर्क कि कोई संयुक्त संपति नहीं थी तो इसको साबित करने का भार उस पर था कि संपति उसकी स्व अर्जित थी।

यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कोई सबूत नहीं लाया गया है कि वादग्रस्त संपत्तियों पर उसका अनन्य कब्जा था। पारिवारिक संपत्ति की संयुक्तता के संबंध में एक धारणा यह बनाई जा सकती है कि सौतेले भाई होने और अलग-अलग व्यवसाय और अलग-अलग घर होने के बावजूद बापुराव और शिवप्पा के पास, कुछ संयुक्त संपत्तियां थीं जो 1944 से पहले हासिल की गई थीं। यह मानने का ऐसा कोई स्पष्ट कारण प्रतीत नहीं होता

है कि विक्रय विलेख दिखावटी या नाममात्र का था। [para 15,16] [985--G·H; 986-A-D]

1.2 यह सच हो सकता है कि अन्य विक्रय विलेख (प्रदर्श 49) जिसमें संपत्तियों की 8 वस्तुएं शामिल थीं, बापुराव की स्व-अर्जित संपत्तियां थीं। निस्संदेह बापुराव पर भारी कर्ज़ था। उसे अपने ऊपर लिया गया कर्ज चुकाना था। हम देख सकते हैं कि पीडब्लू-3 ने अपने बयान में कहा है कि शिवप्पा ने वास्तव में बापुराव के लेनदारों को ऋण की पूरी राशि का भुगतान किया था। निर्विवाद रूप से बापुराव का वादग्रस्त संपत्तियों पर कब्जा बना रहा। हालाँकि, यह माना जाना चाहिए कि शिवप्पा द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित समझौता विलेख को ध्यान में रखते हुए उसके कब्जे का चरित्र बदल गया है। विचाराधीन भूमि पर उसका कब्ज़ा प्रकृति में अनुज्ञेय था। [Para 17-18] [986-D-G]

2. ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों भाइयों के बीच कुछ आपसी समझ थी। यदि पीडब्लू-3 पर विश्वास किया जाए और हमें ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि हमें नीचे की अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों से अलग क्यों होना चाहिए, तो सभी दस्तावेजों को सदभाविक रूप से निष्पादित किया था। हम मान लेंगे कि बापुराव उक्त संपत्तियों पर कब्ज़ा बनाए रखना चाहता था, लेकिन यह माना जाना चाहिए कि यही कारण था कि समझौता विलेख को निष्पादित किया गया था। यदि उक्त विलेख दिखावटी या नाममात्र के होते,

तो बापुराव के लेनदारों ने उसके खिलाफ कुछ कार्रवाई की होती। यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसके खिलाफ कोई मुकदमा या कोई अन्य कार्यवाही शुरू की गई थी। हालाँकि मुकदमे में संपत्तियों पर उसका भौतिक कब्ज़ा बना रहा, बिक्री विलेख के साथ-साथ समझौता विलेख को भी उसी दिन निष्पादित करने पर, कानूनन माना जाएगा कि उसे बेदखल कर दिया गया और एक अलग क्षमता में वापस कब्ज़ा प्राप्त कर लिया। दूसरे शब्दों में, विक्रय विलेख और समझौता विलेख के निष्पादन पर, उसके कब्जे की प्रकृति और चरित्र बदल गया। यह सच है कि 1958 में बापुराव की मृत्यु के बावजूद, शिवप्पा ने लक्ष्मीबाई को बेदखल करने की कार्यवाही शुरू नहीं की। यह उसकी ओर से उदारता का कार्य हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी के हितों के प्रतिकूल भूमि पर कब्जा किया था। [Para 19-20) [987-A-F]

3. मुकदमा स्वामित्व पर आधारित था। एक बार जब उन्होंने अपना स्वामित्व साबित कर दिया तो मूल प्रतिवादी 1 जो अपीलकर्ता की माँ है पर और परिणामस्वरूप अपीलकर्ता पर यह साबित करने की जिम्मेदारी थी कि उन्होंने एस के हित के प्रतिकूल संपत्ति पर कब्जा किया हुआ था। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अपीलकर्ता और उसकी माँ ने प्रतिकूल कब्जे से अपना स्वामित्व पूरा किया है, पार्टियों के संबंधों

को ध्यान में रखना होगा। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दस्तावेजों के निष्पादन का तथ्य प्रश्न में नहीं होने के कारण, यह भी उम्मीद थी कि ब और उनकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 31 के संदर्भ में उन दस्तावेजों को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर करेंगे।

4. प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व का दावा करने के लिए, वादी के लिए कब्जे के इरादे की दलील देना और साबित करना आवश्यक था। एक शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर कब्ज़ा प्रतिकूल कब्ज़े के सिद्धांत का घटक है जैसा कि कहावत nec vi, nec clam, nec precario, में निहित है, लंबे समय तक कब्ज़ा अपने आप में प्रतिकूल कब्ज़ा साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। [Para 23] [990-B-D]

पीटी म्यूनिचिक्कन्ना रेड्डी और अन्य बनाम रेवम्मा और अन्य , [2007 (6) एससीसी 59] –संदर्भित

कलवा देवदत्तम और अन्य मामले बनाम भारत संघ और अन्य । [एआईआर 1964 एससी 880] – लागू नहीं

निर्णय संदर्भित:

(2006) 5 एससीसी 353	संदर्भ	para 22
2007 (6) एससीसी 59	संदर्भ	para 24

एआईआर 1964 एससी 880 लागू नहीं para 25

दीवानी अपीलीय अधिकारिता: दीवानी अपील संख्या 1782-1783/2009

बॉम्बे उच्च न्यायालय के द्वितीय अपील संख्या 105 और 107/2007 के निर्णय और आदेश दिनांकित 22.01.2008 से।

यूयू ललित, गौरव अगर्वल :- अपीलकर्ता की और से

के. वि. विश्वनाथन, सुधांशु एस चौधरी, नरेश कुमार के लिए अरुंधति एस. सुखतांकर:- प्रत्यर्थी के लिए

न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया -

एस.बी. सिन्हा, न्यायाधिपति.

1. अनुमति स्वीकृत।

2. ये अपील बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधिपति के द्वारा द्वितीय अपील संख्या 105/2007 तथा दीवानी प्रार्थनापत्र संख्या 280/2007 साथ द्वितीय अपील संख्या 107/2007 तथा दीवानी प्रार्थनापत्र संख्या 284/2007 में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 22-01-2008 के खिलाफ दायर की गई है।

3. बापुराव और शिवप्पा सौतेले भाई थे। लक्ष्मीबाई बापुराव की पत्नी थी। शिवप्पा ने पार्वतीबाई से शादी की।

बापुराव की मृत्यु वर्ष 1958 में हुई थी। लक्ष्मीबाई की मृत्यु 12-12-1978 पर हुई।

अपीलार्थी विश्वनाथ लक्ष्मीबाई के दत्तक पुत्र हैं जिन्हे 5-06-1967 को गोद लिया गया था। नगुबाई शिवप्पा और पार्वतिबाई की पुत्री है। शिवप्पा की मृत्यु 1977 में हो गई। प्रत्यर्थी नागप्पा, पुत्र नागुबाई को कहा गया है कि शिवप्पा ने 24-01-1969 में गोद लिया था। पक्षकार हिन्दू विधि के बॉम्बे स्कूल के अधीन आती है। नागप्पा की उम्र लगभग 19 वर्ष थी जब उन्हे गोद लिया गया था।

4. बापुराव और शिवप्पा अलग-अलग रह रहे थे। उनका व्यवसाय भी अलग था।

बापुराव के पास स्वयं अर्जित संपत्ति भी थी। कथित तौर पर बापुराव को अपने व्यवसाय में काफी घाटा होने के कारण वर्ष 1955 में कर्ज लेना पड़ा था। अपने लेनदारों से 35,000/- रु. उधार थे।

5. कथित तौर पर संपत्ति को लेनदारों से बचाने की दृष्टि से, 2-07-1955 को या उसके आसपास, चार पंजीकृत विलेख निष्पादित किए गए थे। पहला विभाजन विलेख था, जिसके अनुसार, संयुक्त परिवार की संपत्तियों को समान शेयरों में विभाजित किया गया था (जिसे प्रदर्श 36 के रूप में चिह्नित किया गया था) और बापुराव ने संयुक्त परिवार की संपत्ति का अपना हिस्सा शिवप्पा को 5000/- रुपये की राशि में बेच दिया। उन्होंने कथित

तौर पर उक्त राशि के लिए अपनी स्व अर्जित संपत्ति भी शिवप्पा को बेच दी। शिवप्पा द्वारा एक ही दिन में समझौते के दो विलेख निष्पादित किए गए, जिसके अनुसार, उनके पक्ष में हस्तांतरित भूमि बापुराव को उनके जीवनकाल के दौरान आनंद के लिए तय की गई थी।

हालाँकि, यह निर्धारित किया गया था कि बापुराव का संपत्तियों पर कोई पूर्ण अधिकार नहीं होगा और वे इसे अलग करने के हकदार नहीं होंगे।

6. शिवप्पा की मृत्यु जो कि जैसा पहले देखा गया 20 नवम्बर 1977 को हुई, के बाद वादी ने संयुक्त सिविल न्यायाधीश, जे.डी. मोहोल, जिला न्यायाधीश, सोलापुर और प्रधान जिला न्यायाधीश, सोलापुर के समक्ष तीन मुकदमे दायर किए गए थे।

नियमित सिविल वाद संख्या 81/1978 के रूप में चिह्नित पहला मुकदमा यह घोषणा करने के लिए दायर किया गया था कि 22 टिन की चादरें जो अपीलार्थी के कब्जे में हैं, का स्वामित्व उसके पास था और उसे इसे सौंपने का निर्देश के लिए अनिवार्य निषेधाज्ञा का आदेश दिया जाए। नियमित दीवानी वाद संख्या 85/1978 जो संयुक्त सिविल न्यायाधीश जे.डी. मोहोल के न्यायालय मे दायर किया था वो वादग्रस्त सम्पति पर शिवप्पा के वंशज तथा विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते अपने स्वामित्व और कब्जा घोषित करवाने के लिये था।

नियमित सिविल वाद संख्या 20/1979 वादगत संपति के समबंध मे स्थायी निषेधाज्ञा की राहत के लिए दायर किया था।

7. विचारण न्यायालय के सामने, वादी-प्रत्यर्थी संख्या 1 ने यह भी तर्क किया कि शिवप्पा ने लक्ष्मीबाई के पक्ष में एक इकरारनामा निष्पादित किया था जिसमे उसे संपति की आमदनी लेने की अनुमति दी गई। उसके अनुसार, यह इकरारनामा जो अपंजीकृत था, लक्ष्मीबाई (मूल प्रतिवादी संख्या 1) के पक्ष में प्यार ओर सद्भावना के कारण निष्पादित किया था। वादी को संपति का कब्जा देने के लिए आज्ञापक निषेधाज्ञा इस आधार पर चाहा गया कि उसने संपति की देखरेख नहीं की और इसके कारण एक दीवार गिर गई जो इकरारनामा की शर्तों का उल्लंघन है। यह भी तर्क किया गया कि वाद के लंबित रहने के दौरान लक्ष्मीबाई की मृत्यु होने से कथित इकरारनामा समाप्त हो गया और वादी वैसे ही कब्जे का अधिकारी हो गया।

(1) अपीलार्थी ने अपने जवाबदावा में कथन किया कि:

(2) वादग्रस्त संपति बापुराव साबले की स्व अर्जित संपति है। 2-7-1955 को निष्पादित किए गए दस्तावेज बनावटी व सांकेतिक थे जो कभी इस्तेमाल होने के लिए नहीं बल्कि सिर्फ लेनदारों से संपति को बचाने के लिए निष्पादित किए गए थे।

(3) बापुराव साबले की मृत्यु 1958 में होने के बावजूद शिवप्पा या उसकी पत्नी ने 22 वर्ष तक कोई स्वामित्व, हक, कब्जा या दावा नहीं किया, ये तथ्य दर्शाता है कि ये लेन देन बनावटी था ।

(4) वाद परिसीमा से वर्जित है क्योंकि वाद हेतुक बापुराव की मृत्यु से उत्पन्न हो गया था।

(5) प्रथम प्रत्यर्थी का गोद लेना विधिक नहीं था क्योंकि वह उस समय 19 वर्ष का था इसलिए उसे वाद लाने का कोई आधार प्राप्त नहीं है।

वैकल्पिक तौर पर यह भी तर्क किया गया कि वादग्रस्त संपति में 12 वर्ष से अधिक समय से रहने के कारण अपीलार्थी का प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व हो गया है।

विद्वान विचारण न्यायालय ने निम्न विवाद्यक बनाए:

"विवाद्यक

क्या वादी यह साबित करता है कि उसके पिता ने इकरारनामा से प्रतिवादी संख्या 1 को वादग्रस्त संपति में उसकी मृत्यु तक जाने की अनुमति कुछ शर्तों के साथ दी थी?

क्या वादी यह साबित करता है कि दोनों इकरारनामे बिना प्रतिफल के थे और बापुराव या लक्ष्मीबाई में कभी कोई हक, स्वामित्व और हित निहित नहीं किया?

क्या प्रतिवादी यह साबित करता है कि शिवप्पा और बापुराव के बीच का बंटवारा छदम था और उस बंटवारे के तहत ने बपुराव ने 5000 रुपये लिए ओर ना ही उसने अपने हक का हिस्सा शिवप्पा को हस्तांतरित किया?

क्या प्रतिवादी यह साबित करता है कि जैसे बँटवारनामा दिनांकित 2-7-1955 छदम था जो सिर्फ संपति को लेनदारों से बचाने के लिए निष्पादित किया गया था उसी तरह समझौता विलेख का निष्पादन भी इसलिए किया ताकि जमीन बचाई जा सके और बापुराव के पास रहे?

क्या प्रतिवादी यह साबित करता है कि विक्रय विलेख दिनांकित 2-7-1955 पर कार्यवाही नहीं की गई ओर वो केवल सम्पति को लेनदारों से बचाने के लिए निष्पादित किया गया था?

10. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

(ए) शिवप्पा और बापुराव संयुक्त पारिवारिक संपति के स्वामी थे और यह नहीं दर्शाया गया है कि कैसे बँटवारानामा छदम था।

(ब) डीडब्ल्यू 3 पंचप्पा निर्वलयप्पा शीलवंत जिसे अपीलकरता द्वारा परीक्षित किया गया की साक्ष्य भरोसेमंद नहीं लगती।

(सी) पी.डब्ल्यू 3 बापुराव की स्वीकृति भरोसेमंद है और सिर्फ इसीलिए कि उसने अपनी जिरह में कहा कि बापुराव तब तक दस्तावेज निष्पादित करने

को तैयार नहीं था जब तक कि उसे कब्जा रखने की अनुमति ना दी जाए, उसपर भरोसा ना करने के लिए काफी नहीं है।

(डी) प्रथम प्रत्यर्थी का गोद लेना जायज था क्योंकि वीरशिवा लिंगायत समाज जिससे पक्षकार आते है, में 14 वर्ष के ऊपर की उम्र के बच्चों के गोद लेने का रिवाज है और यह हिन्दू विधि के बॉम्बे स्कूल के अनुसार है।

(ई) हालांकि वादी लक्ष्मीबाई के पक्ष में निष्पादित इकरारनामा साबित नहीं कर पाया परंतु बापुराव की मृत्यु के बाद उसका संपति पर कब्जा अनुज्ञेय होने के कारण, वाद विधि से वर्जित नहीं है।

11. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने उक्त निष्कर्षों के आधार पर वाद डिक्री किया। इसके खिलाफ दायर अपील, जैसा देखा गया, खारिज की गई।

12. अपीलकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ वकील श्री यूयू ललित ने पहले प्रतिवादी को गोद लेने की वैधता के संबंध में सवाल पर जोर नहीं दिया और कहा कि भले ही यह अमान्य था, पहला प्रतिवादी शिवप्पा की बेटी का बेटा होने के कारण हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अनुसार उनकी संपत्तियां उसे विरासत में मिलेगी ।

13. हालाँकि, विद्वान वकील का तर्क होगा था कि सभी लेन-देन जो 2-07-1955 को निष्पादित चार दस्तावेजों द्वारा प्रमाणित हैं दिखावटी लेन-

देन थे, जिसके समर्थन में निम्नलिखित परिस्थितियों पर निर्भरता रखी गई थी:

(i) 1934 से सौतेले भाई अलग-अलग व्यवसाय और घर बनाकर अलग-अलग रह रहे थे और माना जाता है कि बापुराव भारी कर्ज में डूबा हुआ था और अपने लेनदारों से कुछ कायर्वाही की उम्मीद कर रहा था।

(ii) सभी चार दस्तावेजों को एक ही दिन में निष्पादित किया गया था और पीडब्लू-3 के रूप में उक्त दस्तावेज़ के अनुप्रमाणिक साक्षी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि विचाराधीन संपत्तियों का कब्जा बापुराव के पास ही रहने वाला था।

(iii) इसका कोई कारण नहीं था कि सभी चार दस्तावेज़ एक ही दिन में क्यों निष्पादित किए गए।

(iv) उक्त दस्तावेजों के निष्पादन के बाद भी शिवप्पा या उनकी पत्नी ने कब्जे के किसी अधिकार का प्रयोग नहीं किया।

(v) यदि समझौता विलेख वास्तविक थे और उन पर कार्रवाई की जानी थी, तो शिवप्पा से लक्ष्मीबाई से कब्ज़ा लेने का प्रयास अपेक्षित था और 20 वर्षों की अवधि तक ऐसा नहीं किया गया था।

(vi) लक्ष्मीबाई के पक्ष में कथित अपंजीकृत इकरारनामा न तो प्रस्तुत किया गया था और न ही साबित किया गया था। इसके अलावा यह भी तर्क दिया गया कि मुकदमा लक्ष्मीबाई के जीवनकाल के दौरान दायर किया गया था, इसलिए इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री केवी विश्वनाथन ने तर्क दिया:

(ए) चूंकि सभी तीन अदालतें तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों पर पहुंची हैं, आक्षेपित निर्णयों में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

(बी) अपीलकर्ता की अपने जवाबदावा में दलील कि उक्त दस्तावेज़ पर कार्रवाई नहीं की गई थी, अस्पष्ट होने के कारण उस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

(सी) अपीलकर्ता ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 31 के संदर्भ में कोई मुकदमा दायर नहीं किया है, वह यह दलील नहीं दे सकता कि लेनदेन अवैध और शून्य थे।

(डी) बिक्री विलेख और समझौता विलेख वैध पाए जाने पर, इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(ई) अपीलकर्ता यह साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है कि उसका कब्ज़ा शिवप्पा या पार्वतीबाई के हित के प्रतिकूल था।

15. दिनांक 2-07-1955 को निष्पादित सभी चार विलेख पंजीकृत दस्तावेज हैं। वे वैध निष्पादन की उपधारणा रखते हैं। यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि उक्त दस्तावेज़ दिखावटी या नाममात्र के थे।

नीचे की विद्वान अदालतों ने स्पष्ट रूप से माना है कि अपीलकर्ता अपने ऊपर लागू सबूतों के भार का निर्वहन करने में विफल रहा।

हालाँकि, हम अपने सामने उठाए गए विवादों पर स्वतंत्र रूप से विचार करेंगे।

प्रदर्श 36 एक विक्रय विलेख है जिसके तहत बपुराव ने अपना आधा हिस्सा शिवप्पा को बेच दिया। अगर बपुराव का तर्क कि कोई संयुक्त संपति नहीं थी तो इसको साबित करने का भार उस पर था कि संपति उसकी स्व अर्जित थी।

16. यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं लाया गया है कि वादग्रस्त संपत्तियों पर उसका अनन्य कब्जा था। पारिवारिक संपत्ति की संयुक्तता के संबंध में एक धारणा यह बनाई जा सकती है कि सौतेले भाई होने और अलग-अलग व्यवसाय और अलग-अलग घर होने के बावजूद बापुराव और शिवप्पा के पास, कुछ संयुक्त संपत्तियां थीं जो 1944 से पहले

हासिल की गई थीं। यह मानने का ऐसा कोई स्पष्ट कारण प्रतीत नहीं होता है कि विक्रय विलेख दिखावटी या नाममात्र का था।

17. यह सच हो सकता है कि अन्य विक्रय विलेख (प्रदर्श 49) जिसमें संपत्तियों की 8 वस्तुएं शामिल थीं, बापुराव की स्व-अर्जित संपत्तियां थीं।

निस्संदेह बापुराव पर भारी कर्ज़ था। उसे अपने ऊपर लिया गया कर्ज चुकाना था। हम देख सकते हैं कि पीडब्लू-3 ने अपने बयान में कहा है कि शिवप्पा ने वास्तव में बापुराव के लेनदारों को ऋण की पूरी राशि का भुगतान किया था।

18. निर्विवाद रूप से बापुराव का वादग्रस्त संपत्तियों पर कब्जा बना रहा। हालाँकि, यह माना जाना चाहिए कि शिवप्पा द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित समझौता विलेख को ध्यान में रखते हुए उसके कब्जे का चरित्र बदल गया है। विचाराधीन भूमि पर उसका कब्ज़ा प्रकृति में अनुज्ञेय था।

19. श्री ललित का कथन कि प्रत्येक विक्रय विलेख में प्रतिफल रु. 5000/- दिखाया गया था, लेकिन समझौता विलेख में प्रतिफल रु. 15,000/- दिखाया गया था, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि लेन-देन पर कार्रवाई नहीं की जानी थी, को स्वीकार करना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों भाइयों के बीच कुछ आपसी समझ थी। यदि पीडब्लू-3 पर विश्वास किया जाए और हमें ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि हमें नीचे की

अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों से अलग क्यों होना चाहिए, तो सभी दस्तावेजों को सदभाविक रूप से निष्पादित किया था। हम मान लेंगे कि बापुराव उक्त संपत्तियों पर कब्ज़ा बनाए रखना चाहता था, लेकिन यह माना जाना चाहिए कि यही कारण था कि समझौता विलेख को निष्पादित किया गया था। यदि उक्त विलेख दिखावटी या नाममात्र के होते , तो बापुराव के लेनदारों ने उसके खिलाफ कुछ कायर्वाही की होती।

यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि उसके खिलाफ कोई मुकदमा या कोई अन्य कार्यवाही शुरू की गई थी।

20. हालाँकि मुकदमे में संपत्तियों पर उसका भौतिक कब्ज़ा बना रहा, बिक्री विलेख के साथ-साथ समझौता विलेख को भी उसी दिन निष्पादित करने पर, कानूनन माना जाएगा कि उसे बेदखल कर दिया गया और एक अलग क्षमता में वापस कब्ज़ा कर लिया।

दूसरे शब्दों में, विक्रय विलेख और समझौता विलेख के निष्पादन पर, उसके कब्जे की प्रकृति और चरित्र बदल गया।

यह सच है कि 1958 में बापुराव की मृत्यु के बावजूद, शिवप्पा ने लक्ष्मीबाई को बेदखल करने की कार्यवाही शुरू नहीं की। यह उसकी ओर से उदारता का कार्य हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि अपीलकर्ता ने प्रतिवादी के हितों के प्रतिकूल भूमि पर कब्जा किया था।

21. हम इस आधार पर आगे बढ़ेंगे कि प्रतिवादी नंबर 1 अपने इस तर्क को साबित नहीं कर पाया है कि शिवप्पा ने लक्ष्मीबाई के पक्ष में एक अपंजीकृत दस्तावेज़ निष्पादित किया था।

हालाँकि, नागप्पा द्वारा दायर मुकदमा स्वामित्व पर आधारित था। एक बार जब उन्होंने अपना स्वामित्व साबित कर दिया तो लक्ष्मीबाई पर और परिणामस्वरूप अपीलकर्ता पर यह साबित करने की जिम्मेदारी थी कि उन्होंने शिवप्पा के हित के प्रतिकूल संपत्ति पर कब्जा किया हुआ था।

इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अपीलकर्ता और लक्ष्मीबाई ने प्रतिकूल कब्जे से अपना स्वामित्व पूरा किया है, पार्टियों के संबंधों को ध्यान में रखना होगा। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दस्तावेजों के निष्पादन का तथ्य प्रश्न में नहीं होने के कारण, यह भी उम्मीद थी कि बापुराव और उनकी मृत्यु के बाद लक्ष्मीबाई विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 31 के संदर्भ में उन दस्तावेजों को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर करेंगे।

22. प्रेम सिंह और अन्य बनाम बीरबल और अन्य। [2006 (5) एससीसी 353], में इस न्यायालय ने कहा:

> "20. यदि वादी के पास किसी संपत्ति का कब्जा है, तो वह यह घोषणा करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है कि विलेख उस पर बाध्यकारी नहीं है, लेकिन यदि उसके पास

उसका कब्जा नहीं है, तो एक शून्य लेनदेन के तहत भी, प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से अधिकार दावा किया जा सकता है। इस प्रकार, यह तर्क देना सही नहीं है कि लेन-देन को शून्य माना जाने की स्थिति में परिसीमा अधिनियम के प्रावधान बिल्कुल भी लागू नहीं होंगे।

21. प्रतिवादी 1 ने यह आरोप नहीं लगाया है कि दस्तावेज़ के चरित्र के संबंध में उसके साथ कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन किया गया था। उनके अनुसार, इसके तथ्यों के संबंध में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन किया गया था।

22. निंगवा बनाम बायरप्पा में इस न्यायालय ने माना कि किसी दस्तावेज़ के चरित्र के संबंध में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन शून्य है, लेकिन किसी दस्तावेज़ के तथ्यों के संबंध में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन शून्यकरणीय है: (एससीआर पृष्ठ 801 सी-डी)

"कानूनी स्थिति अलग होगी यदि दस्तावेज़ के तथ्यों के बारे में न कि उसके चरित्र के संबंध में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन किया गया है। निर्णय दस्तावेज़ के चरित्र के बारे में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन और उसकी सामग्री के बारे में कपटपूर्ण दुर्व्यपदेशन के बीच स्पष्ट अंतर करते हैं। पहले के

संदर्भ में यह माना गया है कि लेनदेन शून्य है, जबकि बाद वाले के मामले में, यह केवल शून्यकरणीय है।"

उस मामले में, एक धोखाधड़ी की हुई पाई गई और यह माना गया कि चूंकि अपीलकर्ता को उसके साथ की गई धोखाधड़ी का पता चलने के कुछ दिनों के भीतर मुकदमा दायर किया गया था, इसलिए वह शून्य था। हालाँकि, यह माना गया था: (एससीआर पृष्ठ 803 बीई)

"परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 91 में प्रावधान है कि एक ऐसे उपकरण को अपास्त करने जो अन्यथा प्रदान नहीं किया गया है (और अधिनियम का कोई अन्य प्रावधान मामले की परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है) का वाद तीन साल की सीमा के अधीन होगा जो तब शुरू होती है जब वादी को विलेख को रद्द करने या अपास्त करने का अधिकार देने वाले तथ्य उसे ज्ञात होते हैं। वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय ने सबूतों की जांच के बाद पाया है कि उपहार विलेख, विस्तार 45 के निष्पादन के समय ही अपीलकर्ता को पता था कि उसके पति ने अनुचित प्रभाव से तदावलगा गांव के सर्वेक्षण भूखंड संख्या 407/1 और 409/1 को अपने पास लाने के लिए उस पर दबाव डाला

था। विचारण न्यायालय का निष्कर्ष अपने साक्ष्य के दौरान अपीलकर्ता की स्वयं की स्वीकारोक्ति पर आधारित है। विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता का मुकदमा परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 91 के तहत तदावलगा गांव के भूखंड संख्या 407/1 और 409/1 के संबंध तक वर्जित है।"

27. एक उपधारणा है कि एक पंजीकृत दस्तावेज वैध रूप से निष्पादित किया गया है। इसलिए, एक पंजीकृत दस्तावेज प्रथम दृष्टया कानून में मान्य होगा। इस प्रकार, सबूत का दायित्व उस व्यक्ति पर होगा जो उपधारणा का खंडन करने के लिए सबूत पेश करेगा। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी 1 उक्त उपधारणा का खंडन करने में सक्षम नहीं रहा।

28. यदि वादी द्वारा कोई विलेख तब निष्पादित किया गया था जब वह नाबालिग था और वह शून्य था, तो उसके पास कथित तौर पर संपत्ति प्राप्त करने के लिए मुकदमा दायर करने के दो विकल्प थे। वह या तो विलेख के 12 साल के भीतर या वयस्क होने के 3 साल के भीतर मुकदमा दायर कर सकता था। यहां, वादी ने न तो विलेख के 12 साल के

भीतर और न ही वयस्क होने के 3 साल के भीतर मुकदमा दायर किया। इसलिए, मुकदमे को सही तौर पर विचारण न्यायालय द्वारा परिसीमा द्वारा वर्जित माना गया।"

23. इसके अलावा, प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व का दावा करने के लिए, वादी के लिए कब्जे के इरादे की दलील देना और साबित करना आवश्यक था।

एक शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर कब्ज़ा प्रतिकूल कब्ज़े के सिद्धांत का घटक है जैसा कि कहावत nec vi, nec clam, nec precario, में निहित है, लंबे समय तक कब्ज़ा अपने आप में प्रतिकूल कब्ज़ा साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

24. पीटी म्यूनिचिक्कन्ना रेड्डी और अन्य बनाम रेवम्मा और अन्य, [2007 (6) एससीसी 59], में इस न्यायालय ने कहा:

"इरादे के सवाल को दस्तावेज-मालिक को कैसा प्रतीत हुआ होगा के अनुसार समझना महत्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि प्रतिकूल उपयोगकर्ता का इरादा संपत्ति के दस्तावेज-मालिक को सूचित हो। यहीं पर कानून कब्जे के तरीके के प्रासंगिक गुणों के रूप में शत्रुता और खुलापन को महत्व देता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रतिकूल मालिक का कब्जा इतना

शत्रुतापूर्ण होना चाहिए कि वह कागज-मालिक को उचित नोटिस और अवसर दे सके।"

25. हमें श्री ललित के प्रति निष्पक्षता के साथ कलवा देवदत्तम और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य [एआईआर 1964 एससी 880] मामले में इस न्यायालय के फैसले पर ध्यान देना चाहिए। उस मामले में एक नागप्पा पर आयकर बकाया था। नागप्पा और उनके बेटों के संयुक्त परिवार की अचल संपत्ति कुर्क कर ली गई। नागप्पा ने पूर्व बँटवारे की दलील उठाई। अन्य बातों के अलावा, इस निष्कर्ष पर कि उक्त कथित विभाजन के बावजूद, नागप्पा ने संपत्ति का प्रबंधन जारी रखा, मुकदमा चलाने और रिकॉर्ड पर लाए गए अन्य सबूतों से पूरे परिवार का प्रतिनिधित्व करने में रुचि दिखाई, यह तथ्य पाया गया कि लेनदेन नाममात्र था। इसलिए, उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्य पर लागू नहीं होता है।

26. उपर्युक्त कारणों से, अपीलों में कोई योग्यता नहीं है। अपीलें तदनुसार लागत सहित खारिज की जाती हैं। वकील की फीस 10,000/- रुपये (केवल दस हजार रुपये) आंकी गई है।

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती सानिया हाशमी, आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है औार किसी अन्य उद्देश्य के लिए, निर्णय का अ्ग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा औार निष्पादन औार कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य हाेगा।